RESEARCH HUB – International Multidisciplinary Research Journal (RHIMRJ)
Research Paper
Available online at: www.rhimrj.co.in

नारी सशक्तिकरण का स्वरूप

डॉ0 सोनी गुप्ता

इतिहास विभाग, वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)

जब हम स्त्री की स्थिति और अस्मिता की चर्चा करते है तो सैकड़ों व हजारों वर्शो के धार्मिक ग्रन्थों का उदाहरण देने से नहीं चुकते। यह बड़े से बड़े विद्वान भी करते है। वे भूल जाते है कि समय का सांचा व परिस्थितियां सदैव समान नहीं रहती। बदलाव समाज को अच्छा भी बनाता है और खराब भी। एक मानसिक रूप से बीमार समाज में स्त्री की स्थिति कितनी असुरक्षित है भारत उसका उदाहरण है। इस स्थिति को हम वेद, उपनिशद् या मनुस्मृति में उल्लेखित स्त्री का उदाहरण देकर बच नहीं सकते है। प्रो0 विद्यानिवास मिश्र जैसे विद्वान भी स्त्री की अस्मिता और उसकी श्रेष्ठता को कार्मिक ग्रन्थों से उदाहरण देकर पुश्टि करने का प्रयास करते है और समकालीन समाज में जो अच्छे–बुरे परिवर्तन हो रहे है, उन पर ध्यान देते दिखाई नहीं पड़ते है। वे कहते है ''भारतीय धर्मशास्त्र में स्त्री को अस्मिता नहीं है। मै केवल दो–तीन उदाहरण देना चाहूंगा। एक तो यह है कि हिन्दू कोड बिल जितना अधिकार देता है, भारतीय स्त्री को उससे कही अधिक अधिकार भारतीय धर्मशास्त्र एवं उसकी मूल वैदिक परम्परा में दिए गए है।.... मनु ने और अन्य स्मृतिकारों ने स्त्रीधन की स्थापना की है... परम्परा ने जो अधिकार स्त्री को दिए है, उन अधिकारों की बात तो हम नहीं सोचते वरन यह सोचते है स्त्री को समानता और बराबरी प्राप्त नहीं है। मैं तो कहता हूँ कि बराबरी का सिद्वान्त ही दूशित सिद्धांत है। हमें इस प्रकार के वक्तव्यों को पढ़कर आश्चर्य होता है। धर्मग्रन्थ साक्षी है कि उत्तर–वैदिक काल तक आते–आते स्त्री की स्थिति में गम्भीर परिवर्तन आ गए थे। पुरूष सम्पत्ति का स्वामी बन गया था और स्त्री की स्वतंत्रता मनुस्मृति तक आते–आते समाप्त हो चुकी थी। अपनी आयु के अनुसार वह पिता या पुत्र के अधीन रहने के लिए विवश हो चुकी थी। उस पर परिवार के कार्यों का दायित्व सौंप दिया गया था। वह परिवार की चारदीवारी में बदा होकर रह गई। सच यह है कि धर्म के आदर्श और रूढ़िवादी परम्पराएं वे विश्वास आशिक्षित समाज में तो अपना सिक्का चला सकते है जैसा कि हजारों वर्श तक भारत की जनता को अन्धविश्वासों में लपेटे रखा है। पर विकास की प्रक्रिया ने और शिक्षा के प्रसार और प्रचार ने समाज के आर्थिक सामाजिक ढांचे को ही उलट–पलट दिया। आज की स्थिति में स्त्री शिक्षा में वृद्धि हुई है। वह घर से बाहर निकली है। स्वावलम्बी बन रही है। इसके साथ ही रूढ़िवादी धार्मिक विश्वासों को नकार रही है। पुरूष की सामन्ती मानसिकता में कम ही सही, किन्तु बदलाव आ रहा है। यह स्त्री–पुरूष की साझा समझ की देन है। पर यह परिवर्तन अभी हमें नगरों व महानगरों के स्त्री–समाज में ही देखने को मिल रहा है वह भी शिक्षित स्त्री समाज में। स्त्री अस्मिता को चुनौती के रूप में ले रही है स्त्री। यही कारण है कि वह देश के शीर्श पदों पर अपनी योग्यता क्षमता, प्रतिभा के आधार पर विराजमान है।

वास्तव में धर्म और शास्त्रों के घेरे इतने कठोर होते गए कि उस घेरे को तोड़ना तब तक सम्भव नहीं था जब तक कि देश आर्थिक रूप से विकसित नहीं होता, प्रगति नहीं करता। यही कारण है कि 1990 के पश्चात् भूमण्डलीकरण का दौर इतनी तीव्रता से बढ़ा कि स्त्रियों नरे शिक्षा के उस पहलू को पकड़ा जो उन्हें रोजगार दे सके। अच्छे पदों का अवसर दे सके। वे लक्ष्मण रेखाएं जो पुरूष समाज ने स्त्रियों के लिए बनाई थी, उसे शिक्षित, जागरूक और प्रगतिशील महिलाएं तोड़ रही है। आज की नारी स्त्री अस्मिता और स्त्री–विमर्श के अनेक पहलुओं से भिज्ञ हो रही है। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने इसीलिए कहा था कि ''जब पुनर्विवाह के संदर्भ में स्मृतियों की बात करते हुए कहा कि स्मृतियाँ व्यावहारिक सामाजिक जीवन पर लागू नहीं होती है। तब उनका उदेष्य स्मृतियों के आदर्शो को उद्घटित करना था। प्रो0 रामजी सिंह परिवर्तन और परम्परा के संबंध में बेवाक टिप्पणी करते है, ''इस संबंध में हम अवष्य प्रश्न करना चाहेंगे कि परम्परा और परिवर्त्तनों को अलग नहीं किया जा सकता है। जिस भी समाज ने परम्परा को खूंटे की तरह पकड़े रखा और परिवर्तनों की उपेक्षा की, वह समाज इतिहास के कूड़ेदान में चला गया.... भारतीय संदर्भ की बात करते हुए दृश्टि कुछ अधिक आदर्शात्मक हो जाती है। यथार्थ और व्यावहारिकता से उसका स्पर्श नहीं रहता है और यही कारण है कि इतिहास की बातें तो हम करते है लेकिन यथार्थ से उसका संबंध नहीं रह पाता है। यदि भारत में कौटिल्य का 'अर्थशास्त्र' ईमानदारी से लागू किया गया होता तो भारत कि आर्थिक विकास और प्रगति की तस्वीर आज कुछ दूसरी होती और स्त्री समाज सदियों पूर्व स्वावलम्बी बन चुका होता, जो आज तक स्त्री–वर्ग की एक बड़ी संख्या नहीं हो पाई है।

अनादिकाल से स्त्री श्रम का कोई मूल्य नहीं था। परिवार की स्थापना के पश्चात् और मात् सत्तात्मक परिवार के हाशिए पर जाने के साथ स्त्री घर में दोयम दर्जे की सदस्य होकर रह गई। अब तो कुछ जनजातियों में नाम–मात्र के मातृसत्तात्मक परिवार रह गए है। वे भी सभ्यता के विकास के साथ समाप्तप्राय है। हमने धर्म के कर्मकाण्ड और आध्यामित्क पक्ष पर जितना

2016, RHIMRJ, All Rights Reserved ISSN: 2349-7637 (Online)

ध्यान दिया है कि वह अपने स्थान पर महत्वपूर्ण है। इसके साथ स्त्री कर्मकाण्ड को परिवार के घेर में ही कैद करके रख दिया है। हम ऋग वैदिक काल की कुछ अपवाद स्वरूप विद्वान महिलाओं का नाम लेकर अपनी पीठ थपथपा लेते है। मनुस्मृति तक आते–आते स्त्री को अनेक बंधनों में कसा देखते है। ऐसा लगता है कि मनु मानक–व्यवहार को भली–भांति जानते है और मनोविज्ञान को भी । डॉ0 वी.एन. सिंह लिखते है, ''मनु मनोविज्ञान से परिचित है।'' इसलिए वह स्त्रियों को इस प्रकार के कार्य देना चाहते है जो कि उनके स्वभावानुकूल हों और वे सरलता से कर सकें। आपका विचार है कि गृहस्थी का कार्य स्त्रियां सरलता से कर सकती है। इसलिए वह गृहस्थी है। वह घर से बाहर की परिस्थितियों का सामना सरलता से नहीं कर सकती। इसलिए उसे बाहर स्वतंत्र होकर नहीं घूमना चाहिए। स्त्री–पुरूष की क्षमताएं भिन्न–भिन्न है और उसकी सीमाएं भी। मनु ने इसे बहुत ही सावधानी से व्यक्त किया है। पुरूष कठिन और सख्त मेहनत का कार्य कर सकता है जबकि स्त्री नहीं कर सकती। वह घर का कार्य सरलता से कर सकती है।.... उनका विचार है कि दोनों की शारीरिक संरचना में भेद है। दोंनों की मनोवृत्तियां मूलतः एक दूसरे से भिन्न है। मनु ने स्त्री को हर आयु के मोड़ पर पुरूश के अधीन रखा है। बचपन में पिता के जवानी में पति के और बुढ़ापे में पुत्र के अधीन रहना चाहिए। किस तरह मनु घर के कार्यों तक स्त्री को सीमित रखते है क्योंकि उसका श्रम परिवार के कार्यों तक ही उचित है या उसकी क्षमता उतनी ही है। मनु कहते है कि स्त्री को सदा प्रसन्न रहना चाहिए। स्त्री को घर के बर्तन आदि को शुद्ध एवं स्वच्छ रखने वाली और अधिक व्यय नहीं करने वाली होना चाहिए। इस तरह स्त्री–श्रम का मूल्य मनुस्मृति युग में भी परिवार तक ही सीमित होकर रह गया, जिसका पारिश्रमिक मिलने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. डॉ0 वी.एन. सिंह, आधुनिकता एवं नारी सशक्तिकरण, रावत पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, पृ. 161।
2. मृदुला गर्ग, संचेतना, नई दिल्ली, अप्रैल, 2008, पृ. 18–19।
3. के.पी. प्रमिला, लोकगंगा, अलवपुर, अक्टूबर, 2008, पृ. 8।
4. डॉ. वी. एन. सिंह, भारतीय सामाजिक चिन्तन, दिल्ली, 2008, पृ. 44।
5. वेरोनिका ईओंस, इण्डियन माइथोलोजी, पाल देमलिन, लंदन, 1973।
6. जेंडर एण्ड कल्चर इन कंटेंपौरेरी इंडिया, दिल्ली, 1996, पृ. 503–32।

2016, RHIMRJ, All Rights Reserved *ISSN:* 2349-7637 (Online)